

“आचार्य श्रीराम शर्मा की दार्शनिक विचार धारा”**प्रवीन कुमार**शोध छात्र, साई नाथ विश्वविद्यालय,
राँची, झारखण्ड।**सुरक्षा बंसल**शोध निर्देशिका
(गांधी इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल एण्ड टेक्निकल स्टडीज)**सारांश**

मानव के जन्म के साथ ही विचारों का उदय हुआ। मानव मन व परिस्थितियों की अन्तक्रिया से इनकी अभिव्यक्ति शुरू हुई। विचारों के उदय के साथ-साथ उसके आदान-प्रदान की समस्या आयी, जिसे प्रारम्भ में पारस्परिक संकेतों से हल किया गया। इसी विकास क्रम में क्रमशः भाषा का विकास हुआ। भाषा विचारों का वाहन बनी—जो मनुष्यता के एक सिरे से दूसरे सिरे तक इन्हें पहुँचाने का काम करती थीं। बाद में लिपि का निर्माण हुआ। इस पहली लिपि को प्रथम भाषा को अधिकांश विद्वान ‘संस्कृत’ के रूप में स्वीकार करते हैं। इसे आदि भाषा-भाषाओं की जननी का दर्जा प्राप्त है। विश्व की प्रायः हर भाषा में किन्हीं न किन्हीं रूपों में संस्कृत भाषा के शब्दों का प्रचलन है।

प्रस्तावना

अफ़गानिस्तान की भाषा ‘पश्तो’ संस्कृत के शब्दों से भरी पड़ी है काबुल नगर और काबुल नदी दोनों के ही नाम संस्कृत कुभ धातु से उत्पन्न हैं। इस तरह सूक्ष्मतर अध्ययन से प्रकट होता है कि विश्व की विभिन्न भाषाओं में जिन शब्दों का प्रयोग होता है, उनका शुद्धतम रूप संस्कृत में मिलता है। अतएव यही विश्व की मूल भाषा है, जिसमें सर्वप्रथम मानव ने अपने विचारों को अभिव्यक्ति दी। संस्कृत का मूल भारत में होने के कारण यह असंदिग्ध रूप से सत्य सिद्ध होता है कि विचारों की उदय भूमि भारत है। भारत में ही सबसे पहले किताबें लिखी गईं और बुद्धि और ज्ञान का प्रसार भी यहीं से हुआ। अपने

इसी वैचारिक महत्व के कारण यहाँ की संस्कृति—विश्व की प्रथम संस्कृति कहलायी— “सा प्रथमा संस्कृति विश्वारा।”

मानव चेतना के विकास के साथ विचारों का उत्कर्ष

“विचार के दो प्रकार हैं, जो एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं— एक तो विचार हैं जो संवेदनों के परिणाम स्वरूप सत्ताओं की भाँति हैं और हममे बाहर से आते हैं।” बाहर के इस स्रोत को आधुनिक अन्वेषकों ने बुद्धिमण्डल नाम दिया है।

प्रख्यात वैज्ञानिक वर्नाडस्की के अनुसार— “जैसे ही हमारे ग्रह में जीवन के साथ बुद्धि ने प्रवेश किया, ग्रह ने अपने इतिहास के एक नए स्तर में प्रवेश बायोस्फियर—नूस्फियर में बदल गया।” इस नूस्फियर को आचार्य जी ने अपने चिन्तन में तीन नाम दिये हैं, 1. ब्रह्मण्ड का मनोमय कोश 2. समष्टि मन, 3. आइडियोस्फियर अथवा विचार मण्डल। मानव मन समष्टि मन अथवा नूस्फियर के जिस स्तर से अपना सम्पर्क कर पाता है— उसी स्तर का विचार प्रवाह मन में उमड़ने लगता है। इसी तरह परिस्थितियों की प्रतिक्रिया स्वरूप उठे संवेदनों से उत्पन्न विचारों का स्तर वही होता है, जो मानवीय चेतना का है। यदि मानवीय चेतना विकसित हो सके, किसी भाँति अपने उच्च आयामों को पा सके तो न केवल परिस्थितियों की प्रतिक्रिया स्वरूप उठे संवेदनों से उत्पन्न विचारों का स्तर उन्नत होगा, बल्कि उन्नत मानसिक चेतना अपना सम्पर्क विचार मण्डल के विशिष्ट स्तर से जोड़ सकेगी और विचारों का प्रवाह मन के धरातल पर फैल सकेगा। मानवीय चेतना के विकास की निम्नता अथवा उच्चता ही वह कारण है। जिसके कारण विचार का स्तर निम्न अथवा उच्च होता है। इसी कारण से पूर्व काल में अनेक तरह से आध्यात्मिक साधनाओं की खोज हुई, जिसका अवलम्बन लेकर मानवीय चेतना को विकसित करके विचारों के उच्चतम प्रवाह को धारण किया जा सकें। जो ऐसा करने में समर्थ हुए, जिन्होंने विचारों के उत्कर्ष को पाया, उनको ‘ऋषि’ कहा गया। इन्होंने ही वेद ज्ञान का विस्तार किया।

विचारों का विकसित रूप ऋग्वेद— विचारों के विकसित स्वरूप का पहला संकलन ऋग्वेद के रूप में किया गया। “ऋग्वेद केवल हिन्दुओं की ही नहीं, अपितु समस्त संसार की मूल रचना है, क्योंकि परवर्ती अन्य रचनाएँ ऋग्वेद के पश्चात् इस क्रम में आती हैं और उन्हें चिन्तन का विषय में इससे पर्याप्त प्रेरणा मिलती है।”

विचारों का प्रसार

भारत में उत्पन्न मानव जाति विश्व के विभिन्न भागों में फैल तो गयी, परन्तु तपस्वियों—विचारकों के अभाव में “क्रिया का लोप होने से पौण्ड्र, चौण्ड्र, द्रविण, काम्बोज, यवन, शंक, पारद, वहल्व, चीना, किरात, दरद, खश से क्षत्रिय जातियाँ धीरे—धीरे शूद्रत्व को प्राप्त हो गयी।” विश्व के अनेक भागों में जाकर बसने वालों में कुछ ऐसे भी थे, जिन्हें किसी अपराध के कारण दण्डित करके देश निकाला दिया गया था। समय—समय पर इनके प्रशिक्षण—विकास के लिए, भारत भूमि के ऋषि मनीषि लोग बाहर जाते रहे। मनुस्मृति के अनुसार ज्ञान—विज्ञान का विश्व मानवता को शिक्षण इस देश की गौरवपूर्ण परम्परा रही है। विचारों के इसी प्रकार की वजह से “अरबों ने भारत से वेदान्त दर्शन, ज्योतिष गणति, आयुर्वेद, रसायनशास्त्र और प्रशासन कला का ज्ञान प्राप्त किया।” यूनानियों को जितना अधिक भारत की दार्शनिक प्रवृत्ति ने प्रभावित किया, उतना किसी अन्य ने नहीं। भारत वर्ष की प्राचीन दार्शनिक प्रवृत्ति की प्राण प्रतिष्ठा उपनिषदों में मिलती है। उपनिषदों के यूनानी दर्शन पर ऋण का उल्लेख करते हुये एडवर्ड जेलर ने लिखा है— भौतिक शरीर के बन्धनों से ईश्वर सदृश आत्मा की मुक्ति का विचार निःसन्देह भारतवर्ष में ही उत्पन्न हुआ था। भारतीय विचारधारा के प्रभाव से न केवल पश्चिमी क्षितिज पर विचारों का उदय हुआ, बल्कि बाद में भी पश्चिमी विचार और विचारक भारतीय विचारों के प्रभाव से प्रभावित होते रहे।

तत्त्वज्ञान क्या है।

अब यहाँ पर ज्ञान का स्वरूप जानने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि आखिर दुःख की उत्पत्ति होती किन कारणों से? वैसे तो जीवात्मा अपने मूल रूप में आनन्दमय है। तब अवश्य ही कोई कारण ऐसा होना चाहिए जो उसके लिए दुःख की सृष्टि करता है। उसको भी योगवशिष्ठ में इस प्रकार बताया गया है—

“देह दुःख विदुर्व्याधि माध्याख्यं मानसामयम्।

मौर्ख्यं भूले हते विद्या तत्त्वज्ञाने परीक्षयः।।”

संसार के सारे दुःखों का एकमात्र हेतु अविद्या अथवा अज्ञान ही है। जिस प्रकार प्रकाश का अभाव अन्धकार है और अन्धकार का अभाव प्रकाश होता है, उसी प्रकार का अभाव अज्ञान और अज्ञान का ज्ञान होना स्वाभाविक ही है और जिस प्रकार ज्ञान का परिणाम सुख शान्ति और आनन्द है और उसी प्रकार अज्ञान का फल दुःख, अशान्ति और शोक—सन्ताप होना ही चाहिए। यह युग—युग का अनुभूत तथा अन्वेदित सत्य है कि दुःखों की उत्पत्ति अज्ञान से ही होती है और संसार के सारे विद्वान, चिन्तक एवं मनीषी जन इस बात पर एकमत पाये जाते हैं। इस प्रकार अपना—अपना मत देते हुए विद्वानों ने कहा है, चाणक्य ने लिखा—अज्ञान के समान मनुष्य का और कोई दूसरा शत्रु नहीं है।” विश्वविख्यात दार्शनिक प्लेटों ने कहा है— “अज्ञानी रहने से जन्म न लेना ही अच्छा है, क्योंकि अज्ञान ही समस्त विपत्तियों का मूल है।”

जीवन की समस्त विकृतियों, अनुभव होने वाले दुःखों, उल्लसनों और अशान्ति आदि का मूल कारण मनुष्य का अपना अज्ञान ही होता है। यही मनुष्य का परम शत्रु है। अज्ञान का निवारण ज्ञान द्वारा ही हो सकता है। शीत उसकी विपरीत वस्तु आग द्वारा ही दूर होता है। अन्धकार ही परिसमाप्ति प्रकाश द्वारा ही सम्भव हैं। इसलिए ज्ञान प्राप्ति का जो उपाया सम्भव ही उसे करते ही रहना चाहिए।

ज्ञान का सच्चा स्वरूप क्या है? केवल कतिपय जानकारियाँ ही ज्ञान नहीं माना जा सकता। सच्चा ज्ञान का वह है जिसको पाकर मनुष्य आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार कर सके। अपने साथ अपने इस संसार

को पहचान सके। उसे सत् और असत् कर्मों की ठीक-ठीक जानकारी रहे और वह जिसकी प्रेरणा से असत् मार्ग को त्याग कर सन्मार्ग पर असंदिग्ध रूप से चल सके। कुछ शिक्षा और दो-चार शिल्पों को ही सीख लेना भर अथवा किन्हीं उलझनों को सुलझा लेने भर की बुद्धि ही ज्ञान नहीं है। ज्ञान वह है जिससे जीवन-मरण, बन्धन-मुक्ति, कर्म-अकर्म और सत्य-असत्य का न केवल निर्णय ही किया जा सके बल्कि गृहणीय को पकड़ा और आग्रह को छोड़ा जा सके, वह ज्ञान आध्यात्मिक ज्ञान ही है।

ब्रह्मा तथा आत्मा का विचार

सात्त्विकता की ऊँची कक्षा को ब्रह्मा कहते हैं। जैसे तो परमात्मा सत्, रज, तम, तीनों गुणों में मौजूद है, पर उसकी ब्राह्मी ज्योति सतोगुण में ही है। सात्त्विक भाव ब्रह्मा केन्द्र से ही उत्पन्न होते हैं। मनुष्य के मन में यों तो अनेक प्रकार की इच्छाएँ उत्पन्न होती रहती हैं, पर जब सतोगुणी आकांक्षाएँ उत्पन्न होती हैं तो उनका उद्गम केन्द्र प्रेरक बिन्दु वह ब्रह्मा ही होता है। मनुष्य की अंतः चेतना प्रकृति और पुरुष दोनों के संयोग से बनी हुई। मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार प्रकृति के भौतिक तत्व द्वारा निर्मित हैं। जो कृद हम सोचनते, विचारते, धारण या अनुभव करते हैं, वह कार्य मस्तिष्क द्वारा होता है। मस्तिष्क की इच्छा, आकांक्षा, रुचि तथा भावना इंद्रिय रसों तथा सांसारिक पदार्थों की भली-बुरी अनुभूति के कारण ही होती है। स्वयं मस्तिष्क भी शरीर का एक अंग है और अन्य अंगों की तरह वह भी पंचतत्त्वों से प्रकृति से बना हुआ है। इस अंतः करण चतुष्टय से परे एक और सूक्ष्म चेतना केन्द्र है, जिसे आत्मा या ब्रह्म कहते हैं। यह ब्रह्म सात्त्विकता का केन्द्र है, जिसे आत्मा का ब्रह्म कहते हैं।

आत्मा में सदा से ही सतोगुणी प्रेरणाएँ उत्पन्न होती हैं। चोरी, व्यभिचार, ठगी, हत्या आदि दुष्कर्म करते हुए हमारा दिल धड़कता है, पैर भरभराते हैं, भय लगता है और मन में तूफान-सा चलता है, भीतर-ही-भीतर एक सत्ता ऐसा दुष्कर्म करने से रोकती है। यह रोकने वाली सत्ता आत्मा हैं इसी को ब्रह्म कहते हैं।

वेदांत दर्शन ने सारी शक्ति के साथ यही प्रतिपादित किया है कि आत्मा ही ईश्वर है। 'तत्त्वमसि', 'सोऽहम्', 'अयमात्माब्रह्म' सरीखे सूत्रों का अभिप्राय यही है कि आत्मा ही ब्रह्म है।

स्वर्ग और मुक्ति का आनन्द इसी जीवन में स्वर्ग और मुक्ति का आनन्द इसी जीवन में स्वर्ग और मुक्ति अध्यात्मक जगत के दो बड़े पुण्यफल माने जाते हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिए लोग बहुत से धर्म कर्म करते रहते हैं। पर यह दोनों क्या हैं? उनका स्वरूप क्या है? इस विषय में लोगों की कल्पनायें तथा मान्यतायें सही नहीं हैं। कल्पना की जाती है कि स्वर्ग पृथ्वी जैसा लोक है। वहाँ खाने, सोने, मनोरंजन, आराम तथा विषय भोग की प्रचुर सुविधायें रहती हैं। इसी प्रकार मुक्ति के बारे में, सोचा जाता है कि भगवान के लोक में पहुँच कर जीव झंझटों से छुटकारा पा जाता है। उन्हीं के जैसा बनकर रहता है और उन्हीं में लीन हो जाता है। इसी को सालोक्य, समीप्य और सायुज्य मुक्ति कहते हैं। उपर्युक्त मान्यतायें सही नहीं हैं। क्योंकि ग्रह नक्षत्रों में अभी तक किसी ऐसे पिण्ड का पता नहीं चला जिसमें मनुष्य स्तर के जीवधारी प्राणियों के निवास की बात सोची जा सके। फिर हर ग्रह नक्षत्र के जीवों की स्थिति सुविधा, आवश्यकता, प्रकृति तथा बनावट अपने ही ग्रह में रह सकने योग्य बनी होती है। ऐसी दशा में स्वर्ग लोक की बात कुछ ठीक से गले उतरती नहीं। फिर जिन सुविधाओं का वर्णन किया जाता है उनका उपयोग इस स्थूल शरीर से ही किया जाता है। मरने के बाद सूक्ष्म शरीर रह जाता है, जिससे भावनात्मक अनुभूतियाँ तो हो सकती हैं, पर इन्द्रियाँ न होने से इन्द्रिय-सुख कैसे मिलेंगे? स्वर्ग मुक्ति की उपर्युक्त मान्यतायें पौराणिक काल की अंलकारित मान्यतायें हैं। वस्तुतः स्वर्ग आत्म-संतोष को कहते हैं, क्योंकि संसार में वही सबसे अधिक शांतिदायक स्थिति है। जीवन का अस्तित्व सूक्ष्म है, इसलिए पदार्थों का सुख तो शरीर भर को मिलेगा, सूक्ष्म सत्ता को तो भावनात्मक तृप्ति ही प्रसन्न कर सकती है। धन-दौलत, ऐश आराम या इन्द्रिय-सुख पाकर शरीर भर को कुछ सुविधा हो सकती है और वह भा थोड़ी देर के लिए। फिर स्थायी आनन्द तो भावनाओं का ही होता है और उस स्तर की

अनुभूति तभी मिल सकती है जब व्यक्ति का दृष्टिकोण परिष्कृत और क्रिया-कलाप आदर्शवादी मान्यताओं के अनुरूप बन सकें।

मुक्ति का अर्थ होगा बन्धनों से छूटनां विचार करना है कि कौन से बन्धन है जिनसे हम बाँधे हैं और शरीर को रस्सों से तो किसी ने जकड़ नहीं रखा है। निवास भी कैदखाने में नहीं करते। कहीं भी स्वेच्छा से आ जा सकते हैं। यदि संसार को भव-बन्धन कहा जाये तो यह भी उचित न होगा क्योंकि यह विश्व भगवान का विराट रूप हैं जहाँ कण-कण में भगवान व्याप्त हों, वहाँ बंधन कैसा? जिस भाग पर जन्म लेने के लिए देवता तरसते हों, जहाँ अवतारों, ऋषियों और धर्मात्माओं का निरन्तर प्रवाह बहता हो, जहाँ गंगा-यमुना जैसी नदियाँ, हिमालय जैसे पर्वत और प्राकृतिक सुषमा का स्वर्ग बिखरा पड़ा हो, वहाँ जन्म लेना और जीवित रहना एक सौभाग्य ही हैं उसे भव-बन्धन कैसे कहा जाये? मुक्ति वसतुतः अपने दोष-दुर्गणों से, स्वार्थ संकीर्णता से, क्रोध-अहंकार से लोभ-मोह से, पाप-अविवेक से प्राप्त करनी दृष्टाहिए। यही वह शत्रु है जो पग-पग पर दुःख देते हैं। स्वर्ग और मुक्ति अपने दृष्टिकोण को परिष्कृत करके हम इसी जीवन में प्राप्त कर सकते हैं, इसके लिए मृत्युकाल तक की प्रतीक्षा करने की क्या आवश्यकता है?

संदर्भ सूची

आचार्य श्रीराम शर्मा – धर्म तत्व का दर्शन और धर्म

आचार्य, श्रीराम शर्मा – अखण्ड ज्योति जून अंक-06.2003

आचार्य, श्रीराम शर्मा – शिक्षा एवं विद्या

आचार्य, श्रीराम शर्मा – अथर्ववेद

आचार्य, श्रीराम शर्मा – तत्व दृष्टि से बन्धन मुक्ति

आचार्य श्रीराम शर्मा – स्वर्ग नरक की स्वसंचालित प्रक्रिया